पारंपरिक पंचायत व्यवस्था और आधुनिक पंचायत व्यवस्था में समन्वय करने का प्रयास

डॉ0 सुरेन्द्र ठाकुर *

भारत में प्राचीन काल से ही पंचायत व्यवस्था का अस्तित्व किसी न किसी रूप में कायम रहा है। ईसा से बारह सौ वर्ष पूर्व रचित ऋग्वेद में इनका उल्लेख है; बल्कि छः सौ वर्ष पूर्व तक के युग में भी ग्राम सभाओं (परिषद अथवा सभाओं) एवं ग्रामीणों में (गाँव के वरिष्ठ व्यक्तियों) मौजूद होने का वर्णन मिलता है। ये सभी ग्राम निकाय थे जो गाँव से संबंधित समस्त मामले उच्चाधिकारियों के सामने ले जाने का मार्ग प्रशस्तक करते थे।

समय बीतने के साथ ही इन निकायों का स्वरूप बदला और ग्रामीण एवं क्षेत्रिय स्तर पर धर्म ने उन्हें कुछ सामाजिक, धार्मिक अधिकार प्रदान किये। ग्रामीण स्तर पर परंपरा के रूप में पारंपरिक तत्वों पर आधारित ग्राम पंचायत की तरह की कुछ अन्चय संस्थाएं भी विकसित हुई जिस का अधार जातीय था। जो जाति विशेष के सदस्यों द्वारा उस जाति के सामाजिक आचार विचार और नैतिक संहिता के अन्तर्गत स्वयं विकसित होती थी और जातीय रीति–रिवाज एवं परंपराओं का पालन सुनिश्चित करती थी परन्तु आधुनिक दृष्टिकोण अशिक्षा, भाषा, व्यापार–व्यवसाय वैधानिक नियमों, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण के प्रभाव में ये संस्थाएँ कमजोर होने लगी और सामान्य तौर पर पारंपरिक पंचायत व्यवस्थायें विलुप्त होती चली गयी है और ग्रामीण क्षेत्रों में क्रमिक रूप से लुप्त होती चली जा रही है। यहाँ तक पारंपरिक समाजों में उनकी लोकप्रिय संस्थाएँ क्रमिक रूप से महत्व खोती चली गयी है।

यह बात आदिवासी पंचायतों के लिए सत्य प्रतीत होती है। जहाँ कि आधुनिकीकरण के प्रभाव के परिणाम स्वरूप उनकी पारंपरिक संस्थायें स्थानीय मामलों में बहुत अधिक कारगर नहीं रह गयी है। इसके विपरीत अनेक आदिवासी समाजों में संख्यात्मक दृष्टि से अपने क्षेत्र में अपनी संस्कृति और परंपराओं के प्रभाव को बनाये रखने में सक्षम है। वहाँ ऐसी संस्थायें आज भी जीवन्त और कार्यरत है। तमिलनाडु के 'नीलगिरी' पर्वत श्रृंखलाओं में निवास करनेवाली 'बदगा' आदिवासियों में ऐसी पंचायत संस्थायें आज भी जीवन्त है तथा स्थानीय संस्थाओं के संदर्भ में न केवल प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं बल्कि आज भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था के रूप में कायम है।

***एम. ए., पी. एच. डी. पी. जी. राजनीतिशास्त्र विभाग ति0 माँ0 भा0 विश्वविद्यालय, भागलपुर**

यह बात वर्त्तमान झारखण्ड राज्य के संथाल परगना क्षेत्र में पाये जाने वाले आदिवासियों के संदर्भ में भी शतप्रतिशत सही है। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले बहुसंख्यक आदिवासी जातियों की अपनी पंचायत व्यवस्था है तथा वे आज भी वे किसी न किसी रूप से वर्त्तमान है बल्कि अधिक प्रभावशाली भी है। इन जातीय पंचायतों के निर्णय आज भी इस समुदाय के सदस्यों के लिए उतने ही बाध्यकारी और स्वीकार है जितने पारंपरिक समय में थे। जनसमर्थन और स्वीकृति इन पंचायत निर्णयों के पीछे बाध्यकारी शक्तियां होती है और कभी–कभी उनके निर्णय सामान्य प्रभाव के लिए एक चुनौती बन जाती है।

आदिवासियों की पंचायत–व्यवस्था–आदिवासियों की पंचायत व्यवस्था परगना से लेकर गाँव के स्तर तक व्यवस्थित रूपों में कारगर थी और यह परगना सर्किल तथा गाँव के स्तर पर विभाजीत था। परगनैत परगना के प्रधान थे, देश मांझी सर्किल का पंच प्रमुख या ग्राम प्रधान गांव के मामले में प्रधान की भूमिका निभाते थे। गांव के अन्दर की समस्या गांव में ही निपटायी जाती थी और गाँवों के बीच के पारस्परिक विवाद का निपटारा क्षेत्र या परगना के स्तर किया जाता था। इन पदाधिकारियों की शक्ति एवं स्थिति बराबर वालों में, पंचों में प्रथम की थी। ये संस्थायें ही आदिवासी समाजों में अधिकारों एवं कर्त्तव्यों की व्याख्या करता था। नियमों को लागू करता था, उत्सवों तथा त्यौहारों का नियंत्रण करता था। उनकी पहल शक्ति के बिना या उनकी अनुपस्थिति में कोई भी उत्सव, त्यौहार या शादी विवाह संभव नहीं था। यदि किसी गांव में ग्राम प्रधान गैर संथाल हो जाता था तो संथाल अपने में एक 'हण्डी मांझी' नियुक्त कर लेते थे, जो उनका ग्राम प्रधान होता था। वह केवल प्रशासनिक कार्यों का ही सम्पादन नहीं करता था बल्कि सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और आर्थिक सभी पहलुओं का नियंत्रण करता था।

आदिवासियों की पंचायत व्यवस्था एक अनोखी प्रजातांत्रिक व्यवस्था इस अर्थ में थी कि ग्राम प्रधान और परगना प्रशासन के उपर जनता की शक्ति और सत्ता को स्वीकार किया जाता था। गर्मी के दिनों में संथालों की परम्परा के अनुरूप प्रत्येक व्यस्क संथाल लम्बे शिकार पर निकल पड़ता था। इस शिकार में गांव के प्रत्येक व्यस्क की भागीदारी की आशा की जाती थी। इस शिकार की संस्था का संयोजक 'धीरी' कहलाता था जो शिकार यात्रा का प्रधान पुजारी और नियंत्रण करता था। 'धीरी' की अध्यक्षता में ही सारे कार्यों को सम्पाति किया जाता था। यह एक ग्रामीण परिषद् के रूप में होती थी जिसमें प्रायः माँझी और परगनैत भी आवश्यक रूप में होती थी। किसी गंभीर प्रकार के मामले पर निर्णय इसी स्थान पर किया जाता था यदि उस मामले को परिषद् में लाया गया हो। परिषद् है। कोई भी मामला कोई भी व्यक्ति ला सकता था; चाहे वह मामला गंभीर हो या सामान्य।

और कोई संगीन मामला जिसके किसी गंभीर बिन्दु पर निर्णय किये जाने की आवश्यकता हो, इसे अगले वर्ष की परिषद् के लिए रख लिया जाता था। यह मामले और निर्णय के बीच जगह देने जैसा था ताकि परिस्थितियों के सामान्य होने की स्थिति में उद्वेग कि जगह विवेक से निर्णय लिया जा सके।

आदिवासयिों की पंचायत व्यवस्था का पारंपरिक सत्ता सिद्धांत आधुनिक प्रजातांत्रिक सत्ता के विचाार के अत्यधिक करीब थी। प्रजातांत्रिक सत्ता के इस विचार की अभिव्यक्ति प्रत्येक वर्ष माघ के महीने में होने वाले एक उत्सव में होती थी। जिस में पंचायत के पदाधिकारियों के पद के वंशानुगत होने के बावजूद सत्ता एवं शक्ति के प्रयोग में आधुनिक संस्थाओं की तरह प्रजातांत्रिक व्यवस्था की अभिव्यक्ति होती थी। माघ (जनवरी या फरवरी) के महीने के इस प्रकार के उत्सव के लिए कोई खास दिन निश्चित होती थी। अन्य संथालों के द्वारा भी यह उत्सव मनाया जाता था। इस दिन ग्राम देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती थी और बलि के बाद सबसे पहले ग्राम प्रधान अपने प्रधान को पद का परित्याग करते हुए गांव वालों को यह शक्ति सौंप देते थे। अन्य सभी पदाधिकारी भी अपने पद से पद त्याग करते थे और गांव वालो को यह पद समर्पित कर देते थे। कुछ दिनों के बाद पुनः समारोह का आयोजन किया जाता था जिसमें पूरा समाज पुनः यह सत्ता अपने प्रतिनिधियों को सौंप देते थे। भले ही यह सत्ता का हस्तांतरण महज एक उत्सव की तरह प्रतीत होती हो, यह आधुनिक जनसत्ता और सर्वाजनिक संप्रभुता के सिद्धांत को अभिव्यक्त करता है।

आदिवासी समाजों में पारंपरिक पंचायत व्यवस्था का प्रभाव–किसी भी संस्था का प्रभावशाली होना या नहीं होना उस संस्था के प्रति समाजिक स्वीकृति सामाजिक आदर पर निर्भर करता है। जनजातिय समाजों का कोई भी व्यक्ति इन पारंपरिक संस्थाओं की आज भी समाप्ति नहीं चाहता है। 96 प्रतिशत से अधिक आदिवासी इन संस्थाओं को बनाये रखने के पक्ष में है। यह इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि ये पारंपरिक संस्थाएँ आदिवासी समाजों में कितने लोकप्रिय और आदरणीय है।

जनजातीय समाजों में इन संस्थाओं के प्रति आदर का कारण पंचायत की इस व्यवस्था में समाज के बुजुर्गों का महत्व और समाज के लोगों में अपने बुजुर्गों में आदर की भावना है। यह सामान्य धारणा है कि आधुनिकता के प्रभाव ने सामाजिक जीवन के तारों को झकझोर कर रख दिया है। इसके पारंपरिक मूल्य एवं पारंपरिक मान्यताओं के प्रति समर्थन एवं आदर के समक्ष प्रश्न चिन्ह उपस्थिति किये हैं। फलतः सामाजिक जीवन के समक्ष अनेक कठिनाईयों उपस्थित हुई है। परन्तु इसके विपरीत यह एक तथ्य है कि आदिवासी समाजों में बुजुर्गों के प्रति आदर के भाव अब भी कायम है और वे आज भी गांव के समस्त गतिविधियों के केन्द्र बिन्दु में बने हुए हैं।

यह बात सत्य है कि युवा वर्ग में इन संस्थाओं से मुक्ति की प्रवृति देखी जाती है परन्तु बड़ों के प्रति आदर की पारंपरिक भावना के कारण बुजुर्गों को आज भी अत्यधिक प्रतिष्ठा की नजर से देखा जाता है और बुजुर्गों की विवेकपूर्णता की धारणा आज भी सम्मान है। पंच फैसला ईश्वर का फैसला है और वह सच्चे न्याय का एकमात्र साधन है। वे अपने मामले इन पंचायतों के समक्ष ले जाना, अपरिचित न्यायालयों के समक्ष ले जाने की तुलना में बेहतर समझते हैं। यदि कोई ऐसा करता है तो वैसे व्यक्तियों को सम्पूर्ण गांव की एकता और प्रतिष्ठा का विरोधी माना जाता है।

जनजातियों के लिए इस प्रकार का न्याय उसकी पहुँच के अधीन है। यह प्रणाली सरल है इसकी कार्यवाही सीधी हैं आदिवासियों की परंपराओं, विश्वासों, सामाजिक–सांस्कृतिक पद्धति एवं रीति–रिवाजों के अनुरूप है। ऐतिहासिक रूप से आदिवासी समाज न्याय और दंड के इस विधान से जुड़ा हुआ है। फलतः यह उनकी समझ के अन्तर्गत एवं गतिविधियों के अनुरूप एवं जीवन की शैली में समाहित हो चुका है। इस प्रकार के न्याय के लिए विवाद को लिखित रूप से और कोर्ट फीस के साथ मामले को दायर करने की जरूरत नहीं होती है। परिणाम स्वरूप वकील और गवाह की व्यवस्था की जरूरत भी नहीं होती। फलतः सस्ता और सुलभ होने के कारण भी न्याय ही वह व्यवस्था जनजातीय समाज के लिए अधिक उपयोगी और पारंपरिक रूप से विश्वसनीय है। ब्रिटीश काल से ही जनजातीय समाजों के लिए शीघ्र न्याय की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था और उसके लिए ब्रिटिश हुकुमत ने उस की पंचायत व्यवस्था को मजबूत बनाने में सहयोग किया था। पंचायत की ये पारंपरिक संस्थायें तुरंत फैसला करती है और अपने फैसले को तुरन्त लागू करती है। जब कि सामान्य न्याय प्रणाली में अत्यधिक देर लगने की प्रवृति है ही अगर न्याय प्राप्त हो भी गया तो उस फैसले को लागू करने, सामान्य लोगों के लिए संभव नहीं होता। इसलिए जनजातीय समाजों में इनकी अपनी पंचायत संस्थाएँ शीघ्र, सस्ता न्याय को सुलभ बनाने वाली एक आदरणीय संस्था है और इन संस्थाओं में आज भी इनकी निष्ठा है जो इसके बने रहने का मौलिक कारण और आधार है। इन संस्थाओं के प्रति अधिकारियों के विश्वास का कारण यह भी है कि आधुनिक न्याय प्रणाली का न्याय गवाहों के साक्ष्य पर आधारित होता है। जबकि गांव की पंचायत घटना की सच्चाई से पहले ही अवगत होती है। परिणाम स्वरूप न्याय के गलत होने की संभावना प्रायः नहीं रह जाती है। इस संदर्भ में एक और तथ्य यह है कि बहुत से ऐसे सामाजिक मामले जिसके प्रसारित–प्रचारित होने की तुलना में गोपनीयता को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। वैसे मामलों का निबटारा यदि गांव की पंचायत करती है तो यह उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुरूप है जनजातीय समाजों में किसी व्यक्ति के द्वारा किये

गये अपराध को सामान्य परम्परा का उल्लंघन माना जाता है और वे यह मानते हैं कि इस प्रकार के उल्लंघन से ग्राम देवता और देवियां नाराज हो जाती है और पूरे समाज को उनका कोपभाजन बनना पड़ता है। इसलिए अपराधियों को दण्ड देना इस प्रकोप से बचने की अनिवार्य शर्त भी है।

दंड की प्रकृति काफी कठोर और यहां तक कि 'बिठला' मृत्युदंड' की भी हो सकता है; आदिवासी समाज कठोर दण्ड के निर्णय एवं उसे लागू करने से पहले काफी समय लेता है। जैसे किसी व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत करने का निर्णय उसकी सम्पत्ति छीन लेने की निर्णय उसे गांव से बाहर कर देने का निर्णय आदि के लिए अगले शिकार तक एक वर्ष तक प्रतीक्षा की जाती है, ताकि जबतक सारी बातें उभर कर सामने न आ जाय, विवाद के अनजान पहलू सामने नहीं आ जाये तब तक गंभीर अपराधों के मामले का निर्णय नहीं लिये जाये और गलत निर्णय के क्रियान्वयन से बचा जा सके। अपराधी को दण्ड के रूप में जुर्माना अदा करने; समाज के समक्ष माफी मांगने फिर ऐसी गलती नहीं दुहराने की प्रथा प्रचलित है। वसूले गये जुर्माने का ब्याज पूजा, उत्सव या सामाजिक भोज के लिए किया जाता है और यह बहिष्कार समाज के समक्ष झुकाने के लिए पर्याप्त होता है क्योंकि कोई व्यक्ति उस बहिष्कृत व्यक्ति से संबंध रखने पर उसी के सामान दण्ड का भागी बन जाता है जो दण्ड का एक अत्यधिक प्रभावशाली रूप है।

इससे स्पष्ट है कि आदिवासियों का जीवन सामाजिक दृष्टि से जातीय पंचायत व्यवस्था के रूप में पारंपरिक रूप से संगठित रही है। गांव पारंपरिक पंचायत व्यवस्था की इकाई बनकर काम करने वाली संगठनात्मक आधारभूत स्थानीय संरचना रही है। सामाजिक जीवन के संचालन के लिए संगठित ये सामाजिक पंचायत ही प्रशासकीय, धार्मिक, नैतिक और आर्थिक विवादों के निर्णय के केन्द्र के रूप में ऐतिहासिक रूप से काम करती रही है।

यद्यपि कि आधुनिक पंचायत संस्थाओं की स्थापना से इनके प्राधिकार में कमी आयी है। आधुनिक विधियों में इन की मान्यता और महत्व में अंतर हुआ है। आधुनिकता के तत्वों ने इसकी मान्यता को झकझोरा है। आधुनिक शिक्षा के प्रसार पेशा के बहुआयामी स्वरूप के प्रति आकर्षण ने भी इसकी प्रभावशीलता को घटाया है। परन्तु ग्रामीण आदिवासी समाज और उसके समुदायों में इन संस्थाओं के प्रति निष्ठा, समर्थन की भावना और निष्पक्षता में विश्वास ने आज की पारंपरिक पंचायत संस्थाओं को अपनी कार्यकारी स्वरूप को जीवन्त बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

यद्यपि कि आधुनिक पंचायत संस्थाओं के माध्यम से इन्हें संगठित करने की कोशिश की गयी। ये अपने अधिकारों के प्रति जागरूक देखे गये हैं परन्तु स्थानीय स्तर पर और निर्वाचन के अतिरिक्त सामान्य समयों में राजनीतिक एवं

प्रशासनिक दृष्टि से इनकी जागरूकता के कोई स्पष्ट उदाहरण सामने नहीं आये हैं। ये अपनी समस्याओं का समाधान अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं और संस्थाओं के माध्यम से करने में ही अधिक दिलचस्पी रखते हैं। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट होकर सामने आया है कि वे आधुनिक सरकारी अभिकरणों के माध्यम से मिलने वाली सेवाओं और सुविधाओं के लाभ को प्राप्त करना चाहता है। परन्तु इन लाभों को वे अपनी संस्कृति के संदर्भ में ही प्राप्त करने के प्रति उत्सुक दिखलाई देते हैं।

आधुनिक एवं पारंपरिक पंचायत राज व्यवस्था के बीच समन्वय का प्रयास—बलवन्त राय मेहता प्रतिवेदन पर आधारित पंचायत राज संस्थायें यूँ तो 1961—1978 तक अपनी समस्त संस्थाओं के साथ स्थापित नहीं हो पायी, क्योंकि संथाल परगना क्षेत्र में जिला परिषद् की स्थापना 1978 ई0 में ही पूरी हो सकी। परन्तु आदिवासी समुदाय अपना तादात्म इन संस्थाओं से स्थापित करने में सक्षम नहीं हो पाया। विभिन्न आंकड़े यह दर्शाते हैं कि ग्राम पंचायतों में भी गैर आदिवासी मुखिया और पंचायत समितियों में गैर आदिवासियों की जनसंख्या 50 प्रतिशत से अधिक थी। स्पष्ट है कि निर्वाचन की पद्धति और आधुनिक संस्थाओं में इनकी दिलचस्पी कम थी, समझ से परे थी।

दूसरे इन संस्थाओं से नहीं जुड़ पाने के कारण ये राज्य की उन योजनाओं का लाभ से भी वंचित रह जाते हैं जो मूलतः इनके लिए प्रायोजित किये जाते हैं। इन योजनाओं का लाभ इन तक नहीं पहुँचकर बिचौलिये ही हड़प लेते हैं।

भूरिया समिति ने भी अपने प्रतिवेदन में भारत सरकार को आदिवासियों को विशिष्ट प्रतिनिधित्व दिये जाने की सिफारिश की थी। भारत सरकार ने पंचायत उपबन्ध (अनुसूचित क्षेत्र पर निरन्तर) अधिनियम 1996 पारित कर इस दिशा में एक महत्वपूर्ण वैधानिक आवश्यकता की पूर्ति की है। इसके अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रों में स्थानों के आरक्षण के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। साथ ही साथ इन क्षेत्रों में ग्राम सभा को कुछ अतिरिक्त शक्तियों भी सौंपी गयी। जब झारखण्ड राज्य बिहार से पृथक भारतीय संघ का 28वें राज्य के रूप में अभ्यूदित हुआ तो इसके अन्तर्गत 8 जिले सम्पूर्ण रूप से आये और तीन जिले आंशिक रूप से। जिले के पुर्नगठन के उपरान्त अभी झारखण्ड राज्य में 1 जिले हैं। सम्पूर्ण झारखण्ड क्षेत्र आदिवासी जनसंख्या की बहुलता का प्रतिनिधित्व करता है। छोटा नागपुर और संथाल परगना सम्पूर्ण पठारी क्षेत्र झारखण्ड प्रदेश के अन्तर्गत आ जाता है। यह पठारी क्षेत्र अविभाजित बिहार के अन्तर्गत 'आदिवासी बिहार' के नाम से जाना जाता था। सम्पूर्ण झारखण्ड क्षेत्र में शहरी और ग्रामीण आबादी का अनुपात 80:20 का है। क्योंकि औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के अभाव में 79.75 प्रतिशत आबादी ग्रामीण आबादी का और आदिवासी जनसंख्या शहरों में समान्य है। झारखंड प्रदेश की कुल

आबादी 21843911 है। जिसमें आदिवासियों की जनसंख्या 6044010 है। सम्पूर्ण प्रदेश की कुल जनसंख्या का 27.67 प्रतिशत है। 2001 के जनसंख्या के अनुसार झारखंड की कुल आबादी 26904428 है। जो 1991 से 2001 के बीच 10 वर्षों में जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि की दर को 23.19 प्रतिशत बतलाता है। जनजातियों की सबसे बड़ी जनसंख्या संथालों की है जो गोड्डा, साहेबगंज, पाकुड़, दुमका जिलों में संथाल परगना क्षेत्र में भरे हुए हैं। राज्य की कुल आदिवासी जनसंख्या में संथाल लगभग 35 प्रतिशत है। अर्थात् आदिवासियों की एक तिहाई से अधिक जनसंख्या संथालों की है। मुण्डा दूसरी बहुसंख्या जनजाति है जो कुल आबादी का 9 प्रतिशत है शेष 56 प्रतिशत में सभी जनजातियाँ आती है।

उपरोक्त तथ्यों का विश्लेषण झारखंड प्रांत में आदिवासियों की स्थिति को स्पष्ट करता है। इससे दो बातें स्पष्ट रूप से सामने आती है कि संथाल परगना के विकास का केन्द्र बिन्दु जन–जातीय समुदाय है जो कुल सम्पूर्ण रूप से गरीबी की रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करते हैं।

दूसरा झारखंड प्रदेश का विकास ग्रामीण विकास में केन्द्रित है क्योंकि आज भी यहाँ की 80 प्रतिशत आबादी गाँव में निवास करती है। ग्रामीण आबादी 2001 के जनगणना के अनुसार कृषि पर निर्भर है। सामान्य रूप से झारखंड की पूरी जनसंख्या का 77.6 प्रतिशत कृषि कार्य में लगी हुई है और आदिवासी क्षेत्र का आंकड़ा किया जाय तो गुमला में 80 प्रतिशत, गोड्डा में 88 प्रशित, दुमका में 85 प्रतिशत और साहेबगंज में 86 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में लगी हुई है। यदि कृषक मजदूरों के आंकड़ों को देखा जाय तो यह स्पष्ट होता है कि जमीन पर से आदिवासियों का स्वामित्व छिनते चले जाने के कारण आदिवासियों में कृषक मजदूरों की संख्या दिनानुदिन बढ़ती चली गयी है। यह बढ़ोतरी केवल 1971 से 1981 के बीच 37 प्रतिशत रही है।

इन्हीं तथ्यों के ध्यान में रखकर ग्रामीण आबादी के विकास के लिए निर्मित पंचायत राज संस्थाओं को आदिवासी उन्मुख और आदिवासियों की इच्छा पर आध ाारित करने के लिए झारखंड पंचायत राज अधिनियम 2001 में अनुसूचित क्षेत्रों के लिए प्रावधान किये गये हैं। जिसकी निम्न विशेषताओं को देखा जा सकता है।
पहला :–अनुसूचित क्षेत्रों के पंचायतों में अनुसूचित जाति (अ.जा.) एवं अनुसूचित जन–जाति (अ.ज.जा) के लिए आरक्षण उनकी अपनी–अपनी जनसंख्या के आधार पर होगा।
दूसरा :– परन्तु अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण स्थानों की कुल जनसंख्या के आधे से कम नहीं होगा।
तीसरा :–पंचायत के चेयरपरसन्स के पद सभी स्तरों पर अनुसूचित जन–जातियों के लिए आरक्षित होंगे।

चौथा :– राज्य सरकार मध्यमवर्गीय स्तर पर पंचायत समिति में और जिला स्तर पर जिला परिषद में यदि अनुसूचित जन–जातियों के शक्तियों का प्रतिनिधित्व नहीं हो तो उन स्तर के पंचायत के कुल सदस्यों के दशवें भाग तक नाम निर्देशन करेगा।
पांचवा :–अन्य पिछड़े वर्ग के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित किये जायेंगें जो अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों के साथ मिलकर उक्त पंचायत के समस्त स्थानों क 80 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा।

पारंपरिक और संवैधानिक पंचायत संस्थाओं के बीच अन्तर को मिटाने का प्रयासः–यह प्रावधान अनुसूचित क्षेत्रों में जन–जातियों के लिए अनिवार्य प्रतिनिधित्व की व्यवस्था स्थापित करता है। साथ ही साथ संस्थाओं पर आदिवासियों के नियंत्रण की स्थापना का भी मार्ग प्रशस्त करता है। परन्तु हम बता चुके हैं कि पूर्ववर्ती पंचायतों की कार्यप्रणाली के अन्तर्गत आदिवासियों के प्रतिनिधित्व के बावजूद भी तीनों स्तरों पर पंचायत की प्रतिक्रियाओं पर न तो आदिवासियों का नियंत्रण था न ही उनकी सकारात्मक भागीदारी। जिसके कारण इन संस्थाओं के प्रति इनमें आकर्षण का अभाव था। साथ ही साथ वे अपनी समस्याओं को भी वैधानिक पंचायत के समक्ष लाना पसन्द नहीं करते थे, क्योंकि उनकी निष्ठा अपनी–अपनी पारंपरिक पंचायतों के प्रति व्यवस्था के इन क्षेत्रों में सफल संचालन के लिए इस अधिनियम के अन्तर्गत कुछ नवीन व्यवस्थाएं की गयी है ताकि इन संस्थाओं को उनकी सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप ढालना संभव हो सके।
जैसे :–

1. पंचायत राज की संस्थायें व्यक्तियों के परम्पराओं और रूढियों उनकी संस्कृति पहचान और सामुदायिक साधनों को और विवाद के निराकरण के रूढिगत तरीकों को सुरक्षित एवं संरक्षित करेगी।
2. ग्राम पंचायत के माध्यम से ग्रामों के बाजारों तथा मेलों का (पशु मेला सहित) प्रबन्ध, अपने हाथ मे लेगी।
3. अनुसूचित क्षेत्रों में किसी ग्राम में एक से अधिक ग्राम सभा का गठन किया जा सकेगा। जो परंपरा एवं रूढियों के अनुसार अपने कार्य कलापों का प्रबंध करेगा।
4. अनुसूचित क्षेत्रों को ग्राम सभा की बैठक की अध्यक्षता किसी ऐसे सदस्यों के द्वारा की जायेगी जो पंचायत का मुखिया, उप–मुखिया, सदस्य नहीं हो और उस क्षेत्र में परम्पराओं से प्रचलित रीति–रिवाज के अनुसार मान्यता प्राप्त व्यक्ति जो प्रधान तथा मांझी, मुण्डा, पाहन या किसी अन्य

नाम से जाना जाता हो के द्वारा अथवा उनके द्वारा प्रस्तावित अथवा बैठक में उपस्थित सदस्यों की आम सहमति से मनोनीत, समर्थित व्यक्ति द्वारा की जायेगी।

ये व्यवस्थाएं पारंपरिक पंचायत संस्थाओं तथा वैधानिक आधुनिक पंचायत संस्थाओं के बीच के अन्तर को मिटाने का एक सकारात्मक प्रयास है, क्योंकि इसके द्वारा विवादों के निराकरण की रूढिगत तरीकों के प्रयोग को मान्यता दी गयी है। अलग–अलग गांव में अपनी–अपनी ग्राम सीमा निर्मित करने का न केवल अधिकार दिया गया है, बल्कि उसे अपनी परम्पराओं और रूढ़ियों के अनुसार संचालित करने की स्वतंत्रता भी दी गयी है। परम्परा से प्रचलित रीति–रिवाजों के अनुसार जातीय पंचायतों के प्रधानों को ही ग्राम सभा की अध्यक्षता करने की भी शक्ति दी गयी है, जो इन दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं पारंपरिक एवं वैधानिक के सम्मिलन को वैधानिक मान्यता प्रदान करता है।

झारखंड पंचायत राज अधिनियम 2001 के उपरोक्त प्रावधानों के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि अनुसूचित क्षेत्रों में आदिवासियों के हितों को ध्यान में रखकर विशिष्ट प्रावधान स्वीकार किये गये हैं। इन विशिष्ट प्रावधानों में चार प्रावधान पारंपरिक पंचायत संस्थाओं को अधिक स्वीकार और प्रतिनिध्यात्मक बनाने के उद्देश से किये गये हैं।

जैसे :–

1. चेयर परसन्स के पदों को अनुसूचित जन–जातियों के लिए आरक्षित करना।
2. जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व आरक्षित करना।
3. ग्राम सभा की बैठकों की अध्यक्षता का अधिकार पारंपरिक प्रधानों को सौंपना तथा ग्राम सभा की शक्ति का विस्तार करना और
4. पंच फैसले के तरीके में परम्पराओं का महत्व प्रदान करने के अतिरिक्त परंपराओं रूढियों और सामाजिक संस्कृति के संरक्षण को निर्देश देना।

ये ऐसे प्रावधान हैं जो इन क्षेत्रों में पंचायत राज संस्थाओं की समस्याओं का अंतर है। इनके परिणामस्वरूप प्रतिनिधित्व के संदेह को समाप्त कर दिया गया है। परन्तु पंचायत राज संस्थाओं की बैठकों की प्रतिक्रियाओं में आदिवासियों की भागीदारी स्वरूप का क्या होगा और किस हद तक ये इन संस्थाओं की प्रतिक्रियाओं पर अपने प्रभाव को प्रदर्शित करने में सफल होंगे यह समय की स्थिति को बतलायेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारत मे पंचायती राज– परिपेक्ष्य और अनुभव जार्ज मेन्टर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृ0 सं0 11

2. एम0 डी0 मालवीय, विपेज पंचायत इन इंडिया, ए0 आई0 सी0 सी0 नई दिल्ली; 1956 पृ0 सं0 145
3. रेगुलेशन 4, 1910 सेक्शन 25; सरकारी दश संस्था 2545 दिनांक 10 अप्रैल 1924 संथान परगना जिला गजेटियर में 3 वृत पृ0 सं0– 471
4. वही
5. नर्मदेश्वर प्रसाद वही पृष्ठ संख्या– 275 संथाल परगना जिला गजेटियर
6. ए0 मंत्र मूर्ति; ट्रेडिशनल पंचायत सिस्टम; इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस; जुलाई से सितम्बर 1982 नं0–3
7. एम0 एम0 श्रीनिवास, इंडिया विलेजेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1960, पृ0 सं0 61
8. श्री राम महेश्वरी; ट्राइबल डेवलपमेंट एडमिनिशट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया; मैकमिलन; नई दिल्ली 2000 पृ0 सं0 123
9. झारखण्ड एक परिचय; इंडिया टुडे, पटना– 2001 पृ0 16
10. सेन्सस ऑफ इंडिया 1981 वही पृष्ठ सं0 84
11. भारत सरकार राजपत्र असाधारण; भाग–2, खण्ड 71 प्राधिकार से प्रकाशित नई दिल्ली; 24 दिसम्बर 1996 तथा झारखंड पंचायत राज अधि नियम 2001 पर आधारित
12. झारखंड पंचायत राज अधिनियम 2001 की धारा 17,1 (1 से 7) धारा 36 ख (1 से 9) धारा 51 ख (1 से 8) क्रमशः ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद में आरक्षण।
13. सेन्सस ऑफ इंडिया– 1981 पृ0 सं0 84
14. भारत सरकार राजपत्र असाधारण, भाग–2, खण्ड–1 प्राधिकार से प्रकाशित, नई दिल्ली, 24 दिसम्बर 1996 तथा झारखण्ड पंचायत राज अधिनियम, 2001 पर आधारित।